संपादकीय

जनसत्ता 15 सितंबर, 2014: प्रचलन से बाहर हो चुके कानूनों को रद्द करने की पहल देर से सही, एक दुरुस्त कदम है। ऐसे बहुत सारे कानून हमारी कानूनी किताबों में कायम हैं जो अंगरेजी हुकूमत के दौरान बने थे और जिन्हें बहुत पहले रद्द घोषित कर दिया जाना चाहिए था। यों इनमें से ज्यादातर व्यवहार में लागू नहीं हैं, पर उनका बने रहना कानूनी ढांचे पर बेकार का बोझ है। ये कानून कितने अप्रासंगिक हैं इसका अंदाजा कुछ उदाहरणों से लगाया जा सकता है। मसलन, 1878 में बने एक कानून के मुताबिक अगर सड़क पर पड़ा नोट देख कर सरकार को इसकी खबर नहीं दी तो जेल की सजा काटनी पड़ सकती है। वर्ष 1934 का एक कानून कहता है कि पतंग बनाने, बेचने और उड़ाने के लिए परमिट जरूरी है। सराय अधिनियम, 1887 के मुताबिक लोग किसी भी होटल में पीने के पानी और शौचालय की सुविधा निशुल्क पा सकते हैं। यह सूची बहुत लंबी है जिसमें दो सौ साल पुराने कानून तक शामिल हैं। यों भारत के गणतंत्र घोषित होने के बाद देश का राज-काज हमारे संविधान के अनुसार चलता रहा है, जिसे संविधान सभा ने मंजूरी दी थी। पर औपनिवेशिक जमाने के निशान ये कानून विधिशास्त्र का हिस्सा बने रहें, इसका कोई औचित्य नहीं हो सकता।

वाजपेयी सरकार ने 1998 में प्रशासनिक कानूनों की समीक्षा के लिए समिति गठित कर इन्हें खत्म करने की दिशा में कदम उठाया था। उस समिति की सिफारिश पर अप्रचलित चार सौ पंद्रह कानून रद्द घोषित किए गए, पर उससे ज्यादा तादाद में वैसे कानून अब भी रद्द नहीं हो पाए हैं। लिहाजा, मोदी सरकार ने सभी मंत्रालयों से बेकार पड़ चुके कानूनों को चिह्नित करने को कहा है, साथ ही ऐसे कानूनों की समीक्षा के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय में सचिव आर रामानुजन की अध्यक्षता में एक समिति भी गठित की है। सरकार ऐसे कुछ कानूनों को समाप्त करने के लिए पहले ही एक विधेयक लोकसभा में पेश कर चुकी है, जो फिलहाल लंबित है। पर लगता है इस बारे में कई बार संसद की मंजूरी लेने की जरूरत पड़ सकती है, क्योंकि विधि आयोग भी ऐसे कानूनों का विस्तृत अध्ययन कर रहा है। आयोग ने अप्रचलित बहत्तर कानूनों को समाप्त करने की सिफारिश की है। पर यह उसकी अंतरिम रिपोर्ट है। आयोग ने कहा है कि वह किस्तों में यह आकलन पूरा करेगा और चरणबद्ध तरीके से जरूरी कार्रवाई के लिए सरकार को अपनी रिपोर्टें सौंपेगा। अपने अध्ययन के दौरान आयोग ने यह भी पाया कि पिछले कई वर्षों के दौरान काफी संख्या में पारित विनियोग कानून अपना अर्थ खो चुके हैं, पर कानूनी पुस्तकों का अंग बने हुए हैं।

कानून-प्रणाली को अवांछित भार से मुक्ति दिलाने का यह उद्यम सराहनीय है। पर इसी के साथ अदालती कामकाज को भी औपनिवेशिक ढर्रे से मुक्त और सरल बनाने की पहल होनी चाहिए। आज भी अदालती दस्तावेज ऐसी भाषा में तैयार किए जाते हैं, जो मुवक्किलों की समझ से परे होते हैं। उच्च न्यायालयों के फैसले अमूमन अंगरेजी में होते हैं, कई राज्यों में तो वहां वकील प्रांतीय भाषा में अपना पक्ष भी नहीं रख पाते। इसके खिलाफ कुछ साल पहले मद्रास हाइकोर्ट के मदुरै खंडपीठ के वकीलों ने कई दिन तक धरना दिया था। औपनिवेशिक नजरिए का एक उदाहरण हाल में तब सामने आया जब चेन्नई में एक जज को धोती धारण किए होने के कारण एक समारोह में शामिल होने से रोक दिया गया। इसकी चौतरफा हुई आलोचना का असर यह हुआ कि तमिलनाडु सरकार ने एक विधेयक लाकर कुछ खास जगहों पर परिधान संबंधी इस चलन पर रोक लगा दी। मगर प्रशासन, पढ़ाई और अदालती कामकाज में अंगरेजी का जो वर्चस्व है, उससे मुक्ति दिलाने की बीड़ा कौन उठाएगा!

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta